ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

KEY WORDS:

व्यक्तित्व मीमांसा में सम्यक् चारित्र

Dr. Jubeda Mirzaj Sr.Lecturer, M.A., Ph. D., Government Girls PG College, Sikar (Rajasthan)

Mrs Suman Choudhary RESERCH Scholar, Deaprment of History, Univercity of Rajasthan

सम्यक् चारित्र का मुक्ति मार्ग में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसके बिना जीव संसार में भटक रहा है तथा जन्म मरण का दुःख उठा रहा है। इस चारित्र को धारण कर जीव शीघ्र ही अपने पुरुषार्थ की सिद्धि कर लेता है। मोह राग – द्वेष आदि विकारी परिणामों से रहित आत्मा का परिणाम ही साम्य भाव है और यही चारित्र है।[1] ऐसा चारित्र साक्षात् धर्म है। उक्त चारित्र की प्राप्ति आत्म स्वरूप में लीनता, स्थिरता और रमणता से होती है।[2]

अशुभभाव से निवृत्ति होकर शुभभाव में प्रवृत्ति को भी व्यवहार में चारित्र कहा गया है। जैनदर्शन में बाह्याचार की अपेक्षा भाव शुद्धि पर विशेष बल दिया गया है। भाव शुद्धि बिना बाह्याचार निष्फल है। अज्ञानपूर्वक धारण किया गया चारित्र सम्यक् चारित्र नहीं कहा जाता। अतः सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् ही चारित्र की आराधना करने को कहा है।[3] सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र नियमपूर्वक होते हैं।[4]

विवेचित पुराणों में इसी तरह के भाव 'त्रिरत्न' अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के सम्बन्ध में प्रकट किये गये हैं अतः अज्ञानरूपी अन्धकार समाप्त हो जाने पर ही सम्यग्दर्शन ज्ञान प्राप्त साधु पुरुष को राग–द्वेष रूप हिंसादि की निवृत्ति हो जाने पर द्रव्य–हिंसा की निवृत्ति सहज हो जाती है जैसे अर्थ की अपेक्षा से रहित पुरुष राजा आदि की सेवा नहीं करता वैसे ही विरक्त पुरुष पापों में प्रवृत्त नहीं होता।[5]

गृहस्थों व श्रमणों के चारित्र में शुद्धता के लिए व्रतों का विधान अन्य धर्म–ग्रन्थों की भाँति ही जैन–पुराणों में भी किया गया है। समीक्षित पुराणों में इन व्रतों की संख्या स्थूल रूप से पाँच निर्धारित की गयी है।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह – इन पाँच पापों से रहित अर्थात् विरक्ति को व्रत कहते हैं।[6] पापों से विरक्ति ही चारित्र है।[7] उक्त पाँच पापों से पूर्णतः विरक्ति का नाम सकल चारित्र और अंशतः विरक्ति का नाम देश चारित्र है।

सकल चारित्र मुनियों के होता है व देश चारित्र श्रावकों के होता है।[8] हिंसादि पापों के त्यागरूप मुनि–श्रावक धर्म अहिंसादि रूप है। अहिंसादि रूप चारित्र का आशय मात्र बाह्य हिंसादि प्रवृत्तियों के त्याग रूप ही नहीं, अपितु अन्तरंग कषाय शक्ति के अभाव रूप है। कषाय भाव सम्यक् चारित्र के विरोधी हैं।

कषायें पच्चीस होती है – अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ; संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ; तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसंकवेद।

इनमें अनन्तानुबन्धी कषाय स्वरूपाचरण चारित्र को, अप्रत्याख्यानवरण, देश चारित्र को, प्रत्याख्यानावरण सकल चारित्र को और संज्वलन कषाय यथाख्यात चारित्र को घातने में निमित्त है। अष्ट पाहुड़ में आचार्य कुन्दकुन्द ने चारित्र की चर्चा सम्यक्त्वाचरण चारित्र और संयमाचरण चारित्र इन दो रूपों में की है और सम्यक्त्वाचरण चारित्र से भ्रष्ट संयम का आचरण करने वालों को मुक्ति का अभाव बतलाया है।

आलोचित पुराणों में संयमाचरण चारित्र के दो भेद किये हैं – सागार और अनगार। ससंग गृहस्थों के सागार और सर्वसंग रहित मुनियों के अनगार चरित्र होता है।[9] हिंसादि पाँचों पापों के त्याग रूप होने से मुनि श्रावक धर्म अहिंसादि व्रत रू हैं।

पंच महाव्रतों का अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण

पुराणों में पंच महाव्रतों अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का वर्णन[10] मिलता है जिनका अर्थशास्त्रीय अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

1. अहिंसा

आत्मा में मोह–राग–द्वेष की उत्पत्ति ही हिंसा है और इन भावों का आत्मा में उत्पन्न न होना ही अहिंसा है। प्रमत्त योग से प्राणों का वध करना हिंसा है।[11] पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय, चार विकथा, निद्रा और स्नेह ये 15 प्रमत्त योग कहलाते हैं। कषाय रूप से परिणमित मन, वचन, काय के योग से द्रव्य और भाव रूप प्राणों का घात करना हिंसा है। हिंसा दो प्रकार की होती है –भाव हिंसा और द्रव्यहिंसा। इन दोनों के स्व और पर की दृष्टि से दो–दो भेद होते हैं। इस प्रकार की हिंसा के चार भेद हुए स्वभाव प्राण हिंसा, परभाव–प्राण हिंसा, स्वद्रव्य प्राण हिंसा, परद्रव्य प्राण हिंसा।

आत्मा में विकारी भाव, राग द्वेषादि की उत्पत्ति स्वभाव प्राण हिंसा है, क्योंकि इससे स्वात्मा के शुद्धोपयोग रूप भाव प्राणों का घात होता है। प्रमाद के कारण स्वांगों को कष्ट देना, आत्म हत्या आदि करना स्वद्रव्य प्राण हिंसा है। अन्य प्राणियों के अन्तरंग को व्यंग्य, परिहास, कुवचनादि द्वारा पीड़ित करना परभाव प्राण हिंसा है। प्रमाद के वशीभूत होकर अन्य के प्राणों का घात करना, अंग–पीड़ा आदि देना परद्रव्य प्राण हिंसा है। आलोचित पुराणों में भाव हिंसा व द्रव्य हिंसा में भाव हिंसा पर विशेष रूप से सतर्क रहने को कहा गया है।

एक जीव, हिंसा न करते हुए भी हिंसा के फल को भोगने का पात्र होता है जैसे किसी मनुष्य को मारने का संकल्प किया, फिर भी उसको मार न सका किन्तु फल तो भावनानुसार मिलता है, अतः वह मनुष्य हिंसा न करते हुए भी हिंसा के फल को भोगने का पात्र होता है पर दूसरा जीव हिंसा करके भी हिंसा के फल को भोगने का पात्र नहीं होता जैसे मुनिराजों के द्वारा देखकर ठीक प्रकार से चलने पर भी यदि कोई प्राणी मर जाय तो भी परिणामों में मारने के भाव न होने के कारण वे द्रव्यहिंसा करते हुए भी हिंसा के फल के भागीदार नहीं होते।

किसी को हिंसा भी अहिंसा का फल देती है जैसे किसी डाक्टर ने बचाने के भाव से रोगी का ऑपरेशन किया पर वह मर गया तो उसके द्वारा की गई हिंसा भी उसे अहिंसा का फल देती है।

किसी को अहिंसा भी हिंसा का फल देती है जैसे – किसी ने किसी व्यक्ति को मारने के भाव से विष दिया पर उससे उस व्यक्ति का असाध्य रोग दूर हो गया। यद्यपि उस व्यक्ति द्वारा उसका भला हुआ फिर भी उसे हिंसा का फल ही प्राप्त होगा।

यह सब विचित्रता भावनाओं के अनुसार ही है। जिसके जैसे भाव होते हैं उसे वैसा ही फल मिलता है।

हिंसा का त्याग दो प्रकार का होता है –
(1) उत्सर्ग (2) अपवाद

यद्यपि इस अहिंसा व्रत का पूर्णपालन करना उत्तम है तो भी जो पूर्ण रूप से अहिंसा धारण करने में, हिंसा का त्याग करने में असमर्थ हैं उन्हें क्या करना चाहिये? यह स्पष्ट करने के लिए हिंसा के त्याग का क्रम प्रदर्शित करते हुए कहा गया है कि सर्वप्रथम मद्य, माँस, मधु और पाँच उदम्बर फल[12] का त्याग करना चाहिये। आलोचित पुराणों में इनके सेवन से दोष बतलाते हुए इनके त्याग का फल बताया गया है।

मद्य अर्थात् मदिरा भी हिंसा का कारण है मदिरा मन मोहित करती है और मोहित चित्त पुरुष धर्म को भूल जाता है और धर्म को भूला हुआ पुरुष निडर होकर हिंसादि पापों में प्रवृत्त होता है। मदिरा बहुत रस से उत्पन्न हुए जीवों का उत्पत्ति स्थान है, अतः इसके सेवन से अवश्य ही उन जीवों की हिंसा होती है।"

मद्यपान से मानव की अन्तर्शक्ति क्षीण हो जाती है। शराब से विवेक, संयम, ज्ञान, सत्य, शौच, दया आदि गुण नष्ट हो जाते हैं। ये दुर्गुण समाज और देश को भी शक्तिहीन ओर विपन्न बनाते हैं। शराब को राजस्व का बड़ा स्रोत मानना भी भ्रम मात्र है। शराब से उत्पन्न सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक विकृतियों को दूर करने या उनसे जूझने पर सरकार को जो खर्च करना पड़ता है, वह आय की तुलना में कई गुना अधिक होता है। पुलिस और चिकित्सा पर जो खर्च होता है, उसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती है। महिलाओं पर अत्याचार और सड़क–दुर्घटनाओं में भी शराब निमित्त बनती है। ताजा नतीजों के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 80,000 से अधिक व्यक्ति सड़क–दुर्घटनाओं में काल के ग्रास बन जाते हैं तथा 12 लाख से अधिक घायल हो जाते हैं। इन सड़क – दुर्घटनाओं की वजह से देश को 55000 करोड़ रुपयों की आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। अखबारों में आये दिन ज़हरीली शराब से मौतों की ख़बरें आती रहती हैं। जिन समाजों में मद्य का निषेध है, वे समाज निरन्तर और उन्नत होते रहते हैं।

जैनागम में माँस के दोष को बताते हुए कहा गया है कि माँस खाने में अन्य प्राणियों

का घात होता है, अतः माँस में हिंसा है।न केवल प्राणियों को मारकर माँस भक्षण में हिंसा है वरन् स्वयं मरे हुए जीवों के माँस खाने में भी हिंसा होती है, क्योंकि इस भक्षण में माँस के आश्रित रहने वाले सूक्ष्म जीवों का घात होता है। इन सूक्ष्म जीवों की माँस में उत्पत्ति हर समय एवं हर हालत में कच्ची अवस्था में, पकी हुई अवस्था में या पकती हुई अवस्था में होती ही रहती है। इस प्रकार इसके दोष बताते हुए, इसके त्याग की प्रेरणा देते हुए कहा गया कि इनके खाने की बात तो दूर इनके स्पर्शमात्र से भी हिंसा होती है। अतः माँस को तो छूना ही महापाप है।

माँसाहार मानव के लिए लाभदायक नहीं हो सकता, क्योंकि वह मानव का आहार ही नहीं है। शरीर विज्ञान की दृष्टि से मानव मूलतः शाकाहारी प्राणी है। शाकाहार मितव्यय का अर्थशास्त्र है। प्रायः ऐसा कहा जाता है कि अण्डों में बहुत कम खर्च में प्रोटीन व पौष्टिकता प्राप्त होती है लेकिन यह एक मिथ्या प्रचार है।

---

1. आचार्य कुन्दकुन्द : प्रवचनसार, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. हुकुमचन्द भारिल्ल, प्रकाशक – पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, 2008, गाथा 7
2. पं. दौलतराम : छहढाला, टीकाकार – रामजी मणिक चन्द दोशी, अनुवादक – मगनलाल जैन, प्रकाशक – पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, बापूनगर, जयपुर, 2008, 3/2
3. आचार्य पूज्यपाद : सर्वार्थ सिद्धि, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई–दिल्ली, 1995, 1/1
4. आचार्य कुन्दकुन्द : रयणसार, अनुवादिका – आर्यिका स्याद्वादमती माता जी, प्रकाशक – भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्, नई दिल्ली, 2005, गाथा 47
5. आचार्य समन्तभद्र : रत्नकरण्ड श्रावकाचार, टीकाकार – पं. सदासुखदास जी कासलीवाल, प्रकाशक – श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, अजमेर, 1998, श्लोक 48
6. आचार्य उमास्वामी : तत्त्वार्थ सूत्र, टीकाकर्त्री – आर्यिका स्याद्वादमती माताजी, प्रकाशक – भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद, दिल्ली, 2008, 7/1
7. आचार्य समन्तभद्र : रत्नकरण्ड श्रावकाचार, टीकाकार – पं. सदासुखदास जी कासलीवाल, प्रकाशक – श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, अजमेर, 1998, श्लोक 49
8. आचार्य अमृतचन्द्र : पुरूषार्थसिद्धयुपाय, स्वाधीन ग्रन्थमाला 93, संतोष भवन, कटरा बाजार, सागर म.प्र. 1969, श्लोक 41
9. आचार्य समन्तभद्र : रत्नकरण्ड श्रावकाचार, टीकाकार – पं. सदासुखदास जी कासलीवाल, प्रकाशक – श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, अजमेर, 1998, श्लोक 50
10. आचार्य जिनसेन द्वितीय : हरिवंश पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 2/116–121, 57/116
11. आचार्य उमास्वामी : तत्त्वार्थ सूत्र, टीकाकर्त्री – आर्यिका स्याद्वादमती माताजी, प्रकाशक – भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद, दिल्ली, 2008, 7/13
12. बड़, पीपल, पाकर, कठूमर, गूलर।